कालेजियम सिस्टम और न्यायपालिका का निर्णय

प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वाभाविक संस्कार होता है कि वह ऊपर वालों से अधिकतम स्वतंत्रता का प्रयास करता है तथा अपने से नीचे वालों को कम से कम स्वतंत्रता देना चाहता है। लोकतंत्र और तानाशाही में मूलभूत अंतर यह होता है कि तानाशाही में शासन का संविधान होता है तथा लोकतंत्र में संविधान का शासन। पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों में संविधान का शासन है तथा साम्यवादी देशों में शासन का संविधान। मुस्लिम देशों में तो राजशाही है जिसकी हम चर्चा नहीं कर रहे। भारत का संविधान स्वतंत्रता के पूर्व बनना शुरु हुआ तथा उसे बनाने वालो में मुख्य भूमिका उन लोगों की थी, जो स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल रहे। भीमराव अम्बेडकर पश्चिमी ढंग का लोकतंत्र लाना चाहते थे। पण्डित नेहरु साम्यवाद, समाजवाद की तरफ झुके हुए थे और महात्मा गॉधी दोनों से हटकर लोकस्वराज्य का संविधान लाना चाहते थे। गॉधी की मृत्यु होते ही पंडित नेहरु और अम्बेडकर ने मिलकर एक मिश्रित प्रणाली का संविधान बना दिया, जो न तो साम्यवादी देशों की तरह पॉच सात लोगों की कमेटी को निर्णायक अधिकार देता था और न ही पश्चिमी तरीके से आम नागरिकों को संविधान में अंतिम हस्तक्षेप का। अर्थात् संविधान निर्माताओं ने बीच का मार्ग चुनते हुए, जनता द्वारा निर्वाचित संसद को एक तानाशाह के रुप में स्वीकार कर लिया। अर्थात् संसद को ही यह अधिकार दे दिया कि वह कानून भी बना सकती है, उसका पालन भी करा सकती है और जब चाहे तब संविधान में संशोधन करके उसे जनता की मुहर भी घोषित कर सकती है। इसका अर्थ हुआ कि गॉधी का लोकनियंत्रित तंत्र, लोकनियुक्त तंत्र में बदल गया। इन सबके होते हुए भी संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका तथा कार्यपालिका का स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा।

निर्विवाद सत्य है कि पंडित नेहरु तानाशाही प्रवृत्ति के थे। उन्होंने न्यायपालिका को भी कमजोर कर दिया। कार्यपालिका ने तो आज तक कभी सिर उठाने का प्रयास नहीं किया किन्तु न्यायपालिका अवसर की प्रतिक्षा करती रही और अवसर मिलते ही उसने स्वतंत्रता के प्रयास शुरु कर दिये। सर्वोच्च न्यायाधीश पी0 एन0 भगवती के कार्यकाल में असंवैधानिक तरीके से भी जनहित याचिकाओं को स्वीकार करने का आदेश दे दिया गया, जो अब भी जारी है। सन् 1973 में केशवानंद भारती प्रकरण के माध्यम से न्यायपालिका ने दूसरा आक्रमण किया और संसद के संविधान संशोधन के असीम अधिकारों में मौलिक ढॉचा को स्वीकार करना अनिवार्य कर दिया। स्पष्ट है कि भारत की विधायिका पूरी तरह विश्वास खो चूकी थी, किन्तु समाज के पास गुलामी स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। अतः न्यायपालिका के इन असंवैधानिक कदमों को भी भरपूर प्रशंसा मिली। यहॉ तक कि केशवानंद भारती प्रकरण के निर्णय ने तो भारत के लोकतंत्र को ही बचा लिया अन्यथा अब तक भारत में विधायिका के द्वारा लोकतंत्र की क्या–क्या दुर्गति की गई होती यह कल्पना से परे है। इसके लिए न्यायपालिका की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी कम है।

जब तक न्यायपालिका विधायिका की उच्श्रृंखलता पर नियंत्रण करती रही, तब तक उसका समर्थन भी बढ़ता गया। किन्तु न्यायाधीश भी तो मनुष्य ही होते हैं और इसी समाज से आते हैं। अतः नये आने वाले सदस्य यह याद नही रख सके कि लोकतंत्र में न्यायपालिका तानाशाह नहीं हो सकती। न्यायपालिका ने एक तीसरा कदम उठाते हुए सर्वोच्चता का सिद्धांत अपनाया और कालेजियम सिस्टम बनाकर विधायिका की सर्वोच्चता पर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर दी। न्यायपालिका को संविधान संशोधन की समीक्षा तथा उसे अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु उसे स्वयं संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। न्यायपालिका ने वह किया और बदनाम विधायिका कुछ नहीं कर सकी। धीरे–धीरे न्यायपालिका भी उच्श्रृंखल होती गई। न्यायपालिका ने विधायिका के सारे कार्य अपने पास समेट लिये और घोषित कर दिया कि न्यायपालिका सर्वोच्च है। न्यायपालिका द्वारा ऐसे–ऐसे निर्णय भी लिए जाने लगे, जो स्पष्ट रुप से अलोकतांत्रिक थे, किन्तु न तो विधायिका कुछ कर सकती थी और न ही जनता। न्यायपालिका ने तानाशाही तरीके से यह घोषित कर दिया कि राष्ट्रपति को किस समयावधि में फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति का अंतिम निर्णय करना होगा। न्यायपालिका ने यह भी घोषित कर दिया कि प्रधानमंत्री को कितने महिने में किसी विषय पर अंतिम निर्णय करना होगा। किन्तु आज तक न्यायपालिका ने कभी यह घोषित नहीं किया कि न्यायपालिका की निर्णय करने की समयावधि क्या होगी? बहुत जघन्य अपराधों में भी न्यायपालिका किसी समय सीमा में निर्णय करने में असफल रही। यहॉ तक कि न्यायपालिका ने निर्णय में देर होने का कारण भी न्यायाधीशों की कमी बता दिया, तथा न्यायपालिका ने अपराधियों के निर्दोष छूट जाने का सारा दोष भी पुलिस पर डालना शुरु कर दिया। न्यायपालिका ने कार्यपालिका तथा विशेषकर पुलिस वालों के साथ बहुत ही अनुचित व्यवहार शुरु किया। न्यायपालिका ने पुलिस और कार्यपालिका को न्याय सहायक न मानकर एक पक्षकार माना जो गलत था। स्पष्ट दिखता है कि न्यायपालिका जजों की कमी से उतनी ओवर लोडेड नहीं है, जितनी उसके द्वारा अपना काम छोड़कर विधायिका या कार्यपालिका के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप से। न्यायपालिका अपने आपराधिक निर्णय के काम छोड़कर जनहित याचिकाओं में आनंद अनुभव करने लगी। गंगा की सफाई कब हो और कैसे हो? उत्तराखण्ड में आई बाढ़ से प्रभावित लोगों को कैसी सहायता दी जा रही है? ऐसे मुद्दे न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र के नहीं है। यदि विधायिका अपना काम करने में असफल होगी तो उसके ऊपर जनता है, समाज है, न्यायपालिका नहीं। क्योंकि न्यायपालिका तो लोकतंत्र के तीनों अंगो में समान स्तर की भूमिका रखती है। कल्पना करिये कि न्यायाधीशों की संख्या बहुत बढ़ा दी जाये तो इसकी क्या गारण्टी है कि न्यायपालिका अपना काम छोड़कर जनहित याचिकाओं में और वृद्धि नहीं कर देगी। क्योंकि किसी भी इकाई की जब सीमा टूटती है और सीमा तोड़ने में उसे आनंद आता है तो ऐसा आनंद बहुत खतरनाक रुप ले लेता है।

मैं इस पक्ष में नही हूॅ कि संसद सर्वोच्च है और उसे न्यायपालिका के जजों की नियुक्ति में हस्तक्षेप का अधिकार होना चाहिए। किन्तु मैं इस पक्ष में भी नही हूॅ कि न्यायपालिका सर्वोच्च हो और न्यायपालिका को ही जजों की नियुक्ति के असीम अधिकार होने चाहिए। हमें विधायिका सर्वोच्च और न्यायपालिका सर्वोच्च के विवाद में से किसी एक के पक्ष में न जाकर यह स्वीकार करना चाहिए कि दोनों में से कोई सर्वोच्च नहीं है और सर्वोच्च तो भारतीय संविधान है जिसके ऊपर सिर्फ और सिर्फ जनता ही है।

प्रश्न उठता है कि वर्तमान स्थिति में संसद द्वारा जज नियुक्ति कानून ठीक है या कालेजियम सिस्टम। मैं इस मत का हूॅ कि कोई न कोई एक नई प्रणाली विकसित की जानी चाहिए जो न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सके। इस संबंध में मेरा एक सुझाव है कि जब तक कोई और साफ मार्ग न निकले तब तक कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के एक–एक प्रतिनिधि अर्थात् राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष तथा सर्वोच्च न्यायाधीश बैठकर यह निर्णय करें कि तीनों अंगो के बराबर–बराबर लोग बैठकर ऐसी नियुक्ति करना शुरु करें। राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका के लोगों को चुन सकते है लोकसभा अध्यक्ष प्रधानमंत्री विपक्ष का नेता तथा अन्य को संसद से ले सकते है और सर्वोच्च न्यायाधीश समान संख्या में न्यायधीशों को शामिल कर सकते है।

न्यायपालिका और विधायिका के बीच प्रारंभ टकराव घातक होगा। जब तक विधायिका बदनाम थी, तब तक न्यायपालिका को एक पक्षीय समर्थन मिलता रहा। किन्तु अब नरेन्द्र मोदी के आने के बाद राजनैतिक परिस्थितियॉ बदल चुकी है। अब यह टकराव एक पक्षीय रहेगा, ऐसी संभावना नहीं है और इस संबंध में हमारे लोकतंत्र के तीनों अंगो को गम्भीरता पूर्वक विचार करके अपनी–अपनी सीमायें निर्धारित करनी चाहिए।

ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान एक सार्थक प्रयास

दुनिया में व्यवस्था तीन के सन्तुलन से चलती है– 1. व्यक्ति 2. समाज 3. सरकार। भारत एक ऐसा देश है जहॉ सन्तुलन में व्यक्ति और समाज के बीच में एक चौथी इकाई शामिल होती है जिसे परिवार कहते हैं। दुनिया की संवैधानिक व्यवस्था में परिवार को मान्यता नहीं है और उसी अनुसार भारत में भी नहीं है। समाज व्यवस्था की पहली इकाई गॉव को माना गया है। जो बढ़ते–बढ़ते विश्व तक चली जाती है। स्वतंत्रता के बाद बने संवैधानिक ढॉचे में गॉव को संवैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं थी किन्तु 1993 के आसपास राजीव गॉधी के कार्यकाल में गावों को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई।

ग्राम सभा शब्द कब से शुरु हुआ यह मुझे नहीं पता किन्तु 1990 के आसपास संविधान का प्रस्तावित ढॉचा बनाते समय रामानुजगंज में ग्राम सभा शब्द चर्चा में आया। उस समय चर्चा में देश भर के सैंकडों विद्वान शामिल थे। जिनमें महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रुप में श्री ठाकुर दास जी बंग तथा स्वामी मुक्तानंद भी थे। विदित हो कि यही ठाकुर दास जी बंग, राजीव सरकार द्वारा नियुक्त संविधान संशोधन की प्रस्तावित समिति के भी सदस्य बने तथा समिति के प्रस्ताव पर ग्राम सभा शब्द को संवैधानिक मान्यता मिली। राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के बीच यदि स्पष्ट विभाजन रेखा खींची जाये तो ग्राम सभा समाज का प्रतिनिधित्व करती है और ग्राम पंचायत राज्य का। ग्राम सभा कोई चुनी हुई प्रतिनिधि सभा न होकर स्वाभाविक रुप से बनती है। जिसमें गॉव का प्रत्येक मतदाता स्वाभाविक रुप से सदस्य होता है। ग्राम सभा की सदस्यता न कभी प्रारंभ होती है और न कभी मृत्यु पूर्व समाप्त। इस तरह कभी ग्राम सभा समाप्त नहीं की जा सकती। उसकी सदस्यता में कभी फेर बदल नहीं किया जा सकता। न ही किसी कानून द्वारा उसके निर्माण में हस्तक्षेप किया जा सकता है। ग्राम सभा का निर्माण लोकनियंत्रित तंत्र की शुरुवात है क्योंकि ग्राम पंचायत पर ग्राम सभा का नियंत्रण होता है। किन्तु संविधान संशोधन के बाद भी राजनेताओं ने कुछ बहाने बनाकर ग्राम पंचायत को ग्राम सभा के अर्न्तगत न करके उसे अपने अन्तर्गत ही बनाये रखा। अर्थात् ग्राम पंचायत में लोकतंत्र लोकनियुक्त तंत्र तक ही सीमित रहा, लोकनियंत्रित नहीं हो सका। दोनों में स्पष्ट अंतर है कि यदि तंत्र के अधिकार लोक या लोक द्वारा प्राप्त अधिकारों के नियंत्रण में ही तो वह लोकनियंत्रित तंत्र होता है और यदि तंत्र को अधिकार लोक द्वारा नियुक्त कोई कमेटी देती है और उन अधिकारों में लोक किसी प्रकार कम ज्यादा नहीं कर सकता तो वह लोक नियुक्त तंत्र होता है। संविधान संशोधन द्वारा कल्पना की गई थी कि संविधान द्वारा ग्राम सभा को जो 29 अधिकार दिये गये है उन अधिकारों का स्वतंत्रता पूर्वक संचालन ग्राम सभा ग्राम पंचायत के माध्यम से कर या करा सकेगी। किन्तु राजनेताओं ने षड़यंत्र पूर्वक ऐसा नहीं होने दिया और ग्राम पंचायत अब भी सरकार का ही प्रतिनिधित्व करती रही भले ही संविधान संशोधन को 22 वर्ष क्यों न बीत गये हों। यदि उन 29 अधिकारों की चर्चा करें तो संविधान में ही 11 वी अनुसूची के माध्यम से 29 अधिकार ग्राम सभाओ को दे दिये गये है। इन उन्तीस अधिकारों में ग्रामीण स्तर की शिक्षा, भूमि सुधार, लघु सिचाई, पशु पालन, मछलीपालन, वन सुधार, लघुवनोपज व्यापार, लघु उद्योग, ग्रामीण उद्योग, गृह निर्माण, पेयजल, जलावन, सड़क, पुलिया, ग्रामीण विद्युतिकरण, प्राकृतिक उर्जा, गरीबी उन्मूलन, प्राथमिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, वृद्ध शिक्षा, ग्रामीण पुस्तकालय, सांस्कृतिक कार्य, मेला और बाजार, स्वास्थ, साफ–सफाई, परिवार कल्याण, महिला बालक वृद्ध सुरक्षा, अशक्त अपाहिज आदिवासी हरिजन सुरक्षा, वित्त, सामूहिक न्याय आदि शामिल हैं। मैं समझता हूॅ कि इतने विषय गांवों को दे देने के बाद कोई अन्य विषय बचता ही नहीं है, जो गांवों को स्वावलम्बी और सशक्त बनाने में सहायक हो। इस तरह गॉवो को उस सीमा तक अपनी व्यवस्था करने का अधिकार है जितने से उसका कोई संबंध है। सबसे पहले यह कानून दिग्विजय सिंह के कार्यकाल में म0प्र0, छ0ग0 में लागू हुआ। इसका श्रेय दिग्विजय सिंह की अपेक्षा उनके राजनैतिक गुरु ब्रम्हदेव जी शर्मा को जाता है जो स्वयं संविधान संशोधन की प्रस्ताव देने वाली समिति के सदस्य थे। किन्तु एक–दो वर्षो में ही देश के अन्य राजनेताओं को आभाष हो गया कि यह संविधान संशोधन उनके अधिकारों में बहुत कटौती कर देगा और

इसलिए वे इस संविधान संशोधन को असफल करने के लगातार प्रयास करते रहे। जहॉ–जहॉ भी संघ समर्थित सरकारे बनी भले ही वे म0प्र0 में ही क्यों न हो, उन्होंने भी पूरा प्रयत्न करके इन संशोधनों को निष्प्रभावी किया। अनेक राज्य सरकारों ने तो इन्हें अब तक लागू ही नहीं किया। ब्रम्हदेव जी शर्मा इस संबंध में ईमानदारी पूर्वक आन्दोलन करते–करते थक कर बैठ गये किन्तु किसी राजनेता ने उनकी एक न सुनी।

ग्राम पंचायत को ग्राम सभा नियुक्त करती है किन्तु उस पर ग्राम सभा का नियंत्रण नही होता। इसका अर्थ हुआ कि ग्राम सभा को कुछ प्रशासनिक अधिकार दिये गये। कोई भी विधायी अधिकार नहीं दिया गया। ग्राम सभा आर्थिक दृष्टि से कभी आत्मनिर्भर नहीं हुई क्योंकि उसे अपना टैक्स लगाने के लिए कभी प्रेरित नहीं किया गया। इसका अर्थ हुआ कि लगभग सारा खर्च सरकार देती है और सरकार ही पूरी व्यवस्था का नियंत्रण करती है। ग्राम सभा अपना स्कूल खोल सकती है। किन्तु उस स्कूल के लिए सरकार से कोई धन आवंटित नहीं होगा और जब सरकार अपने खर्च पर अपना शिक्षक नियुक्त करेगी तो उस शिक्षक पर ग्राम सभा का आंशिक नियंत्रण ही होगा, कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं। होना तो यह चाहिए था कि ग्राम सभा अपना टैक्स लगाती और अपना शिक्षक नियुक्त करती। यदि जिले में कॉलेज खोलना है तो जिला सभा अपना धन संग्रह करके कॉलेज खोलती, अपना नियंत्रण करती और व्यवस्था करती। सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। लेकिन सरकार की नीयत खराब रही और उसने गॉवों को आत्म निर्भर नहीं होने दिया।

हम लोगो ने छत्तीसगढ के रामचन्द्रपुर ब्लॉक में शोध करके यह पाया कि हमारी छ0ग0 सरकार हमारे विकास खण्ड से जितना टैक्स लेती है उसका बहुत कम हिस्सा इस ब्लॉक के गांवों पर खर्च करती है। जबकि यह ब्लॉक देश के अति पिछड़े विकास खंडो में गिना जाता है। लेकिन ऐसा प्रचारित होता है जैसे सरकार दूसरी जगहों से टैक्स लेकर हमें पिछड़ा समझकर यहॉ अधिक खर्च करती है। हम लोगों ने रामचन्द्रपुर ब्लॉक में आन्दोलन करके सरकार से यह मॉग की कि सरकार वह ऑकड़ा प्रसारित करें कि इस ब्लॉक से कितना टैक्स लेती है और यहॉ कितना खर्च करती है। सरकार जितना टैक्स लेती है उतना ही यहॉ खर्च करें तो हम संतुष्ट हैं। लेकिन सरकार की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह ऑकडे बता सके। गॉव में ग्राम सभा द्वारा नियुक्त शिक्षक छः हजार रुपये मासिक पर पूरी ईमानदारी से स्कूल में पढ़ाने को तैयार हैं, किन्तु सरकार अपने गुलाम नियुक्त करने के लिए उन्हें बीस से तीस हजार रुपये तक देती है और वे आधा अधूरा काम करते हैं। सरकार कहती है कि ग्राम पंचायत उन पर नियंत्रण करें और उक्त सरकारी शिक्षक ग्राम पंचायत से लेकर सरकारी पदाधिकारियों तक को उपकृत करता रहता है। यदि ये 29 विभागों का सारा नियंत्रण ग्राम सभा को दे दिया जाये तो सरकारी बजट की अपेक्षा आधे से भी कम बजट में सारी व्यवस्था हो सकती है। यही हाल टैक्स वसूली का भी है। हमारे गॉव का एक किसान अपने खेत में जो भी अनाज तिलहन वनोपज कपास या अन्य कोई वस्तु पैदा करता है और पड़ोस के बाजार में बेचता है तो उस बाजार से उसे सौ रुपये के उत्पादन के बदले 90 रु. देकर 10 रु. सरकारी खजाने में चला जाता है। यह 90 रु. लेकर जब वह किसान अपने उपयोग के कपड़े बर्तन या कोई अन्य वस्तु बाजार से खरीदता है तो फिर उसे 80 रु. का समान देकर 10 रु. सरकारी खजाने में जमा हो जाता है हिसाब मुताविक यह 20 रु. उस शहर के खाते में जमा होता है जिसने यह धन इकट्ठा किया किन्तु यह पूरा का पूरा बीस रुपये उस गॉव से वसूल होता है जिसने उत्पादन किया और उपभोग किया। हमारे देश के कोई भी शहर न तो किसी तरह का उत्पादन करते हैं और न ही कोई बहुत बड़ा उपभोग। फिर भी शहरों की उन्नति दिन दूगनी रात चौगुनी होती रहती है और गांव बेचारे पिछड़ते जा रहे हैं। गांव को ही यह अधिकार क्यों न दे दिया जाये। टैक्स वसुली में भी जो भ्रष्टाचार होता है वह रुकेगा या कम हो जायेगा।

वर्तमान कानूनो के अन्तर्गत ग्राम सभा वर्ष में चार बार आयोजित करने का प्रावधान है किन्तु न तो ग्राम सभा में लोगों को बुलाने के लिए आयोजक उत्सुक रहता है न ही जाने वाले, क्योंकि ग्राम सभा में जाने का कोई स्वतंत्र औचित्य नहीं दिखता। वहॉ तो बैठकर सरकारी प्रस्ताव पर चर्चा होनी है और मुहर लगानी है। ग्राम सभा की पूरे देश में जो भी बैठकें होती हैं उनमें दो चार लोग सारे निर्णय कर लेते हैं और या तो रजिस्टर भेजकर कुछ लोगों के हस्ताक्षर करा लेते हैं अथवा स्वयं ही कर देते हैं। हम लोगों ने रामचन्द्रपुर ब्लॉक में अपने कार्यकर्ताओं को ट्रेंनिग दी कि वे ग्राम सभा की बैठक समाप्त होने के बाद अंत में लिख दें कि कुल उपस्थिति कितने लोगों की हुई तथा कितने प्रस्ताव पारित हुए। साथ ही हम लोगों ने यह भी ट्रेनिंग दी कि ग्राम सभा की अगली मिटिंग में पिछली कार्यवाही का पूरा विवरण पढ़कर सुनाया जाये। यह भी समझाया कि पढ़कर सुनाने का काम कोई ग्राम सभा का सदस्य करे, सरकारी पंच सरपंच या कर्मचारी नहीं। इस प्रावधान के शुरु करने से प्रारंभ में तो कुछ कठिनाई हुई किन्तु बाद में बहुत अच्छा लगने लगा। मैं कह सकता हूॅ कि हमारे ब्लॉक के गॉवों में ग्राम सभा में बहुत अच्छी उपस्थिति होने लगी। आप कल्पना कर सकते हैं कि अभी ग्राम सभाओं को बहुत मामूली अधिकार प्राप्त हैं तब भी उनकी उपस्थिति अच्छी होने लग गई तो यदि उन्हें पर्याप्त अधिकार दे दिये जाये तो गॉव काया कल्प हो सकता है। एक गॉव में वहॉ की ग्राम सभा के लोगों ने सरपंच पर

अविश्वास प्रस्ताव पारित करके उसे सरपंची से बर्खास्त करा दिया। दूसरे गॉव पर यह प्रयोग हुआ तो काफी कुछ सुधार दिखने लगा। हमारे ग्राम सभा सशक्तिकरण अभियान के राष्ट्रीय संचालक राकेश शुल्क जी ने कुछ गॉवों में घूमकर निर्विरोध निर्वाचन का वातावरण बनाया तो इस ब्लॉक से निर्वाचित विधायक इतने चिंतित हुए कि उन्होंने सारी ताकत लगाकर इस योजना को असफल करा दिया।

मैं स्पष्ट कह सकता हूॅ कि इस विकास खण्ड में ईमानदारी से ग्राम सभा सशक्तिकरण का प्रयोग हुआ और पंचायत से संबंधित सरकारी अधिकारियों ने भी इस कार्य में भरपूर सहयोग दिया। भले ही सरकारी कामों में उनका और ग्राम पंचायत का अपना हिस्सा क्यों न बंधा हो किन्तु ग्राम सभा सशक्तिकरण में उनका प्रशंसनीय सहयोग रहा।

अंत में मैं कह सकता हूॅ कि ग्राम सभाओं को कार्यपालिक अधिकार के साथ–साथ यदि विधायी अधिकार भी दे दिये जाये अर्थात् ग्राम सभा अपने गॉव में वे सारे नियम बना सकती है, लागू करा सकती हैं, बदल सकती है, संशोधन कर सकती है, जो उस गॉव तक सीमित हो तो भारत में वास्तविक लोकस्वराज्य की शुरुवात हो सकती है।

समाचार समीक्षा

1 साहित्यकारों की सम्मान वापसी और भारत सरकार

पिछले दिनों जब से भारत की राजनैतिक व्यवस्था में एक सम्प्रदाय का एकाधिकारवादी हस्तक्षेप समाप्त होकर दूसरे सम्प्रदाय का हस्तक्षेप शुरु हुआ है तभी से राजनेताओं के साथ–साथ विचार प्रतिबद्ध साहित्कारों के बीच भी टकराव बढ़ गया है। इसी तरह राजनैतिक व्यवस्था के बदलते ही वामपंथी राजनेताओं के साथ–साथ वामपंथ से प्रतिबद्ध साहित्कारों से भी पूॅजीवादी व्यवस्था से जुड़े साहित्य प्रेमियों के बीच टकराव शुरु हो गया है। इन टकरावों में अपने प्रतिबद्ध साहित्कारों के पक्ष–विपक्ष वाले संगठित गिरोह भी खड़े दिखते है। कभी–कभी ऐसे ध्रुवीकरण के बीच का टकराव हिंसक भी हो जाता है। मेरे विचार में किसी भी प्रकार की हिंसा रोकना सम्पूर्ण व्यवस्था का काम है। किन्तु इस प्रकार के टकरावों को रोकने में निष्पक्ष और निरपेक्ष राजनेताओं को बीच में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए बल्कि उन्हें अन्दर–अन्दर प्रसन्न होना चाहिए कि अलग–अलग सम्प्रदाय के लोग आपस में टकराकर निष्पक्ष और निरपेक्ष लोगों की समस्या को कम कर रहे है।

ऐसे ही बदले वातावरण में एक पक्ष विशेष के प्रतिबद्ध साहित्यकार श्री कलबुर्गी की हत्या हो गई। स्पष्ट है कि पिछले 67 वर्षो से साम्प्रदायिक मुसलमानों और वर्ग–संघर्ष प्रेमी वामपंथियों के सहयोग से एक राजनैतिक व्यवस्था चल रही थी। दुनिया जानती है कि उस राजनैतिक व्यवस्था ने अपने सहयोगी साहित्यकारों को बड़े–बडे सम्मान दिये। ऐसे ही सम्मानित कुछ साहित्यकारों की हत्याओं के विरोध में ऐसी ही प्रतिबद्ध विचारधाराओं से जुड़े हुए तथा सम्मान प्राप्त साहित्यकारों में से कुछ ने विरोध स्वरुप अपने सम्मान पदक वापस कर दिये। इस सम्मान वापसी में साहित्य का प्रश्न गौण था और नई राजनैतिक व्यवस्था में बढ़ते साम्प्रदायिक हिन्दुत्व के सशक्तिकरण के विरोध में अधिक था। मैं स्पष्ट हूॅ कि भारत में तीन खतरनाक शक्तियों का सशक्तिकरण घातक है–1. वामपंथी संगठन 2. साम्प्रदायिक इस्लामिक विचारधारा 3. संगठित संघ परिवार। दुर्भाग्य से वामपंथी संगठन तथा साम्प्रदायिक मुसलमानों ने गठजोड़ कर लिया तथा संघ परिवार से उनका सीधा टकराव हुआ। यह टकराव ही सामाजिक सुरक्षा के लिए एक शुभ लक्षण है। साहित्यकारों की हत्या में भी ऐसे ही साम्प्रदायिक संगठनों के बीच आपसी टकराव स्पष्ट है। यह साफ–साफ दिखता है कि मोदी सरकार के पूर्व की व्यवस्था से जो साम्प्रदायिक संगठन लाभ उठा रहे थे वैसा ही लाभ अब मोदी के बाद नये साम्प्रदायिक संगठन उठाने की फिराक में है। दोनों ही पक्ष मोदी सरकार पर दबाव बनाना चाहते है। यह दबाव चूंकि द्विपक्षीय है अतः यह मोदी सरकार के लिए ऑक्सीजन का काम करेगा। मोदी जी लम्बे समय से इस टकराव पर लगभग चुप रहे और बोले भी तो बहुत सतर्क होकर, किन्तु दो–तीन दिनों से अरुण जेटली, रविशंकर प्रसाद सरीखे कुछ तटस्थ नेताओं ने पदक लौटाने वाले समूह की निंदा करके अनावश्यक एक गिरोह का पक्ष लिया। चुप रहना ज्यादा अच्छा होता और पदक लौटाने वाले एक गुटविशेष के साहित्यकारों का विरोध करने के लिए दूसरे गुट के लोगों को सामने आने दिया जाता। जिस तरह महाराष्ट्र में एक पाकिस्तानी गजल गायक अथवा पाकिस्तान के पूर्व विदेश मंत्री कसूरी का अनावश्यक विरोध करने में शिवसेना अलग थलग हो गई। वहॉ भी यदि तटस्थ लोग शिवसेना के पक्ष में खड़े हो जाते तो वातावरण बिगड़ जाता। परन्तु कार्यक्रम के आयोजक सुधीद्र कुलकर्णी की सूझबूझ से शिवसेना का मॅूह काला हुआ। मैं अब भी समझता हूॅ कि नरेन्द्र मोदी जी की सोच और कार्यप्रणाली बिल्कूल ठीक है और अन्य निरपेक्ष तटस्थ लोगों को भी चुप रहकर दोनों के बीच के विवाद का लाभ उठाना चाहिए। यदि इस विवाद में कोई हिंसा होती है, कोई कानून टूटता है तो उस हिंसा को रोकना, कानून की सुरक्षा करना, कानून का काम है, व्यवस्था का काम है, नेता का नहीं, समाज का नहीं, हमारा नहीं।

2 बढ़ते बलात्कार, कारण, समाधान

सफल राजनेता का यह गुण होता है कि वह सफलतापूर्वक दस प्रकार के नाटक करता है। इन्ही नाटकों में से एक यह होता है कि वह समस्याओं का इस प्रकार समाधान करें कि उस समाधान से एक नई और अधिक गंभीर समस्या का जन्म हो। महिला और पुरुष के बीच भी नेताओं के इस नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में बलात्कार की घटनायें लगातार बढ़ रही हैं। पहले इनकी वृद्धि की गति कम थी जो अब बहुत तीव्र हो गई है। साथ ही ऐसे अपराधों की जघन्यता भी बढ़ती जा रही है। अब तो धीरे–धीरे दो–दो साल की बच्चियॉ भी सुरक्षित नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत के पुरुष समाज का पौरुष अधिक जग गया है अथवा पारिवारिक, सामाजिक वातावरण में कोई बुराई या कमजोरी घुस गई है बल्कि सच्चाई यह है कि बलात्कार की घटनाओं में वृद्धि राजनेताओं की भूल वश या जान बूझकर की गई गल्तियों का परिणाम है। बार बालाओं पर रोक, वैश्यावृत्ति को निरुत्साहित करना, विवाह की उम्र बढ़ाते जाना, सामाजिक पारिवारिक व्यवस्था में लगातार छेड़छाड़ आदि के परिणाम बलात्कार के रुप में दिख रहे है। सच्चाई तो यह है कि यदि भारत में अच्छे संस्कार नहीं होते तो अब तक राजनेताओं की नीतियों के परिणाम स्वरुप बलात्कार की घटनाओं को कई गुना अधिक बढ़ जाना था। मेरे विचार में बलात्कार की घटनाओं के बढ़ने में बहुत देर हुई। महिला और पुरुष के बीच दूरी घटे या बढ़े यह क्यों नहीं व्यक्ति को या परिवार को तय करना चाहिए? क्यों कानून यह तय करेगा कि इनकी दूरी क्या हो? एक तरफ जो महिला–पुरुष दूरी घटाना चाहते है, बार बालाओं, वैश्यावृत्तियों या विवाह के द्वारा समाधान चाहते है उस समाधान में राजनेता अडंगा डालते है। दूसरी ओर जो महिला पुरुष दूरी बढ़ाना चाहते है उन्हें सहशिक्षा, सहव्यवसाय महिला आरक्षण, सरकारी नौकरी, राजनीति में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करके दूरी घटाने का प्रयास करते है। इसके बाद भी यदि बलात्कार तेजी से न बढ़े तो ये आश्चर्यजनक ही है।

हर राजनेता बढ़ते बलात्कार पर नकली आंसू बहाता है। मुलायम सिंह, शरद यादव, जैसे गिने चुने नेताओं को छोड़ दे तो अन्य सभी राजनेता नकली आंसू बहाने में माहिर हैं। अरविंद केजरीवाल तो आजकल दिन–रात ऐसे ही आंसू बहा रहे हैं। मैं जानता हूॅ कि जब अरविंद केजरीवाल राजनीति में नहीं थे तो इस समस्या को ठीक ढंग से समझते थे और जब से राजनैतिक विरादरी में शामिल हो गए है तब से उनकी भाषा भी पूरी तरह बदल गई है। सुप्रीम कोर्ट ने कई बार बार बालाओं पर निर्णय दिये किन्तु महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री अब भी इस बात पर अड़े हुए है कि रोक लगनी ही चाहिए। कौन समझाये इन ना समझों को कि ये भूलवश ऐसी गलती कर रहे है अथवा जानबूझकर। यह नियम है कि कोई बांध बनाने के पहले उसके अतिरिक्त जल के निकलने के लिए सुरक्षित मार्ग छोड़ा जाता है। हमारे ना समझ नेता बांध भी बनाना चाहते है और अतिरिक्त जल निकास के मार्ग भी बंद करना चाहते है। महिला और पुरुष के बीच दूरी भी घटाना चाहते है तथा साथ–साथ विवाह की उम्र भी बढ़ाते रहना चाहते है। यह असंभव है।

आजकल राजनेताओं ने एक और गंभीर समस्या पैदा करनी शुरु कर दी है। होना तो चाहिए था कि महिलायें अपने सतीत्व की सुरक्षा स्वयं करें और फिर भी यदि कोई आक्रमण होता है तो कानून उसमें हस्तक्षेप करें। आप यदि अपना बहुमुल्य कीमती सामान सुरक्षित न रखकर सड़क पर यो ही घूमें, रात में भी घूमें, यह जानते हुए कि सामने वाला व्यक्ति लुटेरा भी हो सकता है तब भी आप सतर्क न रहे तो गलती किसकी मानी जायेगी। आपका हीरे का हार आपकी तिजोरी से चोरी हो जाये और सड़क पर घुमते हुए पाकिट से चोरी हो जायें इन दोनों अपराधों में आसमान जमीन का फर्क है। सरकार को चाहिए था कि वह महिलाओं को स्वयं या परिवार या समाज के माध्यम से अपनी सुरक्षा का मार्ग बताती। किन्तु सरकार तो स्वयं उन्हे लापरवाह घुमने के लिए प्रोत्साहित कर रही है और यदि उन पर कोई आक्रमण होता है तो उन्हें हिंसक प्रतिरोध के लिए प्रोत्साहित भी किया जा रहा है। इस हिंसक प्रतिरोध के प्रोत्साहन से एक नई खतरनाक समस्या का जन्म हो सकता है। मुट्ठी भर चरित्रहीन और धूर्त महिलाए इस प्रोत्साहन का दुरुपयोग करेंगी। अपना किमती सोने का हार लेकर सड़क पर प्रदर्शन करते हुए घुमेंगी और जब चाहे किसी पर भी आरोप लगा देगी। मैं देख रहा हूॅ कि राजनेताओं द्वारा महिला पुरुष संबंधो पर जो भी नीतियॉ बनाई जा रही है वे लगातार बलात्कार को प्रोत्साहन देने वाली बन रही है। कुछ मुट्ठी भर संदिग्ध चरित्र की महिलाओं की संतुष्टि के लिए समूचे समाज को महिला पुरुष के टकराव की दिशा में बढ़ाना खतरनाक कदम है । यह तो राजनेताओं को समझना चाहिए। अथवा हमारा आपका कर्तव्य है कि हम राजनेताओं को येन केन प्रकारेण यह सच्चाई समझा दें।

3 वेद और गोहत्या

पांचजन्य संघ परिवार का मुख पत्र माना जाता हे। पांचजन्य के नवीनत्तम अंक में एक बड़ा विवादास्पद लेख छपा है, जिसके अनुसार वेद अपने समर्थको को आदेश देता है कि गोहत्या करने वालो की हत्या कर दी जाये। कुछ दिनों पूर्व बिहार,राज्य के एक प्रमुख नेता ने यह बयान दिया था कि ऋषिमुनि भी गोमांस खाते थे। मैंने भी वेद पढ़े हैं, वेदों का अर्थ जाना है और मेरी जानकारी के अनुसार ये दोनों ही बाते असत्य है। ऐसा वेदो में कहीं नहीं लिखा हुआ है। यदि ऐसा लिखा भी हुआ हो तो उस लिखे से किसी गो हत्यारे की हत्या का औचित्य कहॉ सिद्ध होता है। वेदो के अनुसार ब्राम्हण,वैश्य और शुद्र को किसी भी प्रकार की हिंसा से रोका गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वेदो में ऐसा लिखा भी हो तो उसका अर्थ राज्य,शासन तक सीमित है। न कि मुसलमानों के समान किसी भी व्यक्ति द्वारा दण्ड देने से। यदि आप गो हत्यारे को प्राण दण्ड देना चाहते है तो आपको उसके लिए विधिवत कानून बनाना होगा और कानून के अनुसार ही ऐसा दण्ड दिया जा सकता है, जैसा कि पाकिस्तान में ईशनिंदा के लिए प्रचलित है। हम पाकिस्तान के ऐसे कानून की निंदा करते हैं तो स्पष्ट है कि हम हिन्दू होते हुए भारत में ऐसे किसी कानून का समर्थन नहीं कर सकते भले ही ऐसा वेदो में लिखा ही क्यों न हो।

स्वामी दयानन्द ने अपने विचार देते समय एक बात यह लिखी कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद को पढ़ना–पढ़ाना सब आर्यो का परम धर्म है। उन्होने ही यह भी लिखा कि सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोडने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि वेदो में असत्य नहीं है, किन्तु यदि कभी यह विश्वास हो जाये कि उसकी कोई बात असत्य है, तो स्वामी जी के अनुसार सत्य को ही स्वीकार करना चाहिए,असत्य को नही। यहॉ तक कि यदि स्वामी जी की कही हुई बात भी कभी असत्य सिद्ध हो जाये तो सत्य को ही स्वीकार करना चाहिए। कोई भी बात कभी अंतिम रुप से सत्य नहीं कही जा सकती, चाहे वह किसी के द्वारा भी कही जाये,कभी भी कही जाये। सत्य तो हमेशा वर्तमान के साथ जुडा होता है। तथा अपनी अपनी क्षमतानुसार वर्तमान में निकाला गया निष्कर्ष होता है। इसके पूर्व की कही बातें मार्ग दर्शक होती है,सत्य शोध में सहायक होती है, सत्य भ्झी हो सकती है, किन्तु अंतिम सत्य नहीं। इस प्रकार की पूर्व में कही गई या लिखी गई बातों को अंतिम सत्य स्वीकार करना हिन्दुओं की परिपार्टी नहीं रही है,इतना अवश्य है कि मुसलमान या कुछ सीमा तक इसाई इस परिपाटी का पालन करते है। यदि कोई हिन्दुत्व को ठीक से न समझकर इस प्रकार की उलजलूल धारणाएँ व्यक्त करता है तो ऐसे लोगों को हिन्दू मानना और कहना भी घातक है। मेरे विचार में हिन्दुओं को ऐसे मुस्लिम समर्थक विचार और कार्यप्रणाली से बचना चाहिए।

4 भारत में बिगड़ता साम्प्रदायिक सदभाव और राष्ट्रपति जी की टिप्पणी

भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने भारत के बिगड़ते साम्प्रदायिक सदभाव से दुखी होकर एक चिंता जाहिर की। राष्ट्रपति जी की चिंता बहुत उचित थी, सामयिक थी, तथा साम्प्रदायिक हिन्दुओं के लिए एक उचित सीख थी। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह प्रशंसा योग्य है। उनकी टिप्पणी के बाद सरकार से जुड़े लोग भी अधिक सक्रिय हुए हैं।

राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने राष्ट्रपति के रुप में टिप्पणी की या प्रणव मुखर्जी के रुप में यह समीक्षा का विषय है। अवश्य ही उनकी टिप्पणी में उनका व्यक्तिगत सोच भी हावी रहा होगा। यह व्यक्तिगत सोच हिन्दू संस्कार प्रेरित अधिक था या कांग्रेसी संस्कार प्रेरित यह स्पष्ट नहीं है किन्तु यह स्पष्ट है कि कुछ न कुछ संस्कार प्रेरणा अवश्य थी। विचारणीय है कि यदि प्रणव मुखर्जी राष्ट्रपति न होकर प्रधानमंत्री होते और उनकी सरकार कट्टरवादी मुसलमानों के साथ मिलकर चल रही होती तथा कट्टरवादी मुसलमान वैसा ही आचरण करते जैसा वर्तमान में संघ परिवार कर रहा है, तो क्या प्रणव मुखर्जी प्रधानमंत्री के रुप में उतना भी बोल पाते जितना नरेन्द्र मोदी अथवा कुछ अन्य मंत्री बोल सके। क्या उन्हें उतना दुख होता जितना अभी हुआ? बहुत समय नहीं बीता है जब प्रणव मुखर्जी केन्द्र सरकार में प्रधानमंत्री के बाद दूसरे नम्बर पर थे। सरकार साम्प्रदायिक मुसलमानों की संगठित वोट बैंक की दया पर तथा वामपंथियों के सहयोग से चल रही थी। हेमन्त करकरे की आतंकवादियों ने हत्या कर दी और केन्द्रीय मंत्री ए0 आर0 अन्तुले ने इस स्पष्ट हत्या को भी हिन्दू साम्प्रदायिकता से जोड़ने के बयान दिये। प्रणव मुखर्जी ने न अन्तुले को कोई सीख दी, न ही मंत्री मण्डल से निकाला, न ही स्वयं छोड़ा। उसी कालखण्ड में बाटला हाउस काण्ड में आतंकवादी मुसलमानों ने पुलिस अफसर मोहनलाल शर्मा की हत्या कर दी। वामपंथी तथा मुसलमान कांग्रेसियों के एक समूह ने इस आतंकवादी हत्या के समर्थन में एड़ी चोटी तक का जोर लगाया। जामिया मिलिया के प्रमुख मुनिरुल हसन ने भी खतरनाक बयान दिये। दिग्विजय सिंह ने खुलकर आतंकवादियों का समर्थन किया और दिग्विजय सिंह का समर्थन आज तक जारी है। प्रणव मुखर्जी ने सरकार में रहते हुए कभी कोई कार्यवाही की मांग नहीं की, कभी कोई सलाह भी नहीं दी। यहॉ तक कि कोई सार्वजनिक असंतोष भी व्यक्त नहीं किया। मैं जानता हूॅ कि उस समय की सरकार का चुप रहना मजबूरी थी और वैसी ही मजबूरी आज की सरकार की भी है। उस समय के प्रधानमंत्री ने इतने खतरनाक साम्प्रदायिक वातावरण को देखते हुए भी एक वर्ग विशेष की चापलूसी में बयान दिया और प्रणव मुखर्जी उस बयान से कभी किनारा नहीं किये। आज इतना तो स्पष्ट दिख रहा है कि नरेन्द्र मोदी इस हिन्दु साम्प्रदायिक वातावरण का किसी तरह समर्थन नहीं कर रहे। मैं नही समझता कि उस समय का साम्प्रदायिक वातावरण खतरनाक क्यों नहीं था और आज का कैसे हो गया? यह बात सही है कि 67 वर्षो से चली आ रही एकपक्षीय साम्प्रदायिकता को दूसरे पक्ष की साम्प्रदायिकता से चुनौती मिली है। साम्प्रदायिकता किसी भी पक्ष की अच्छी नहीं होती। सबसे अच्छा तो यह है कि हिन्दू धर्मनिरपेक्ष लोग हिन्दू साम्प्रदायिकता का कस कर विरोध करें और मुस्लिम धर्मनिरपेक्ष लोग मुस्लिम साम्प्रदायिकता का। राष्ट्रपति जी ने अपना ठीक दायित्व निभाया लेकिन उप राष्ट्रपति जी पर प्रश्न चिन्ह लगा रहा ।

साम्प्रदायिक टकराव द्विपक्षीय हो गया है। किसी एक पक्ष का विरोध दूसरे पक्ष का समर्थन माना जायेगा। यदि एक पक्ष कमजोर हो गया है और अब उसकी ओर से कोई खतरा नहीं है तब दूसरे पक्ष को सब मिलकर दबाने का प्रयास करेंगे और उस स्थिति में यदि नरेन्द्र मोदी या मैं पीछे रहे तो आलोचना हो सकती है। किन्तु हिन्दू साम्प्रदायिकता के उभरने के बाद भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता कानून का सहारा न लेकर हिन्दू साम्प्रदायिकता से मैदान में लड़ने को तैयार है तो किसी एक पक्ष की आलोचना ठीक नहीं। क्या आजम खान, शेख अब्दुल्ला या कश्मीर जहॉ मुस्लिम बहुमत है वहॉ कोई कमजोरी के लक्षण दिख रहे हैं। मुझे तो नहीं दिख रहे हैं। आज भी स्पष्ट दिख रहा है कि मुसलमानों का बहुमत साम्प्रदायिक मुसलमानों के विरोध में नहीं दिख

रहा। दूसरी ओर हिन्दू बहुमत आज भी हिन्दू साम्प्रदायिकता को बुरा मान रहा है। इतना बुरा कि बिहार चुनाव में इसके दुष्प्रभाव तक का अनुमान लग रहा है। क्या यह उचित होगा कि हम तटस्थ लोग इस टकराव में किसी एक पक्ष की आलोचना या समर्थन करें? मैं जानता हूँ कि यदि नरेन्द्र मोदी की टीम साम्प्रदायिकता के पक्ष में हो जाती तो इन पुरस्कार लौटाने वालों को मुँह तोड़ जबाब दिया जा सकता था। किन्तु मोदी जी की टीम से जुड़े लोग इस मामले में लगभग चुप रहे और इसी चुप्पी का परिणाम है कि उसका 67 वर्षो से चली आ रही एक पक्षीय साम्प्रदायिकता ने दुरुपयोग किया। जो लोग आज मोदी से उम्मीद कर रहे है वे अपने गिरेवान में झॉककर देखे कि जब मोदी ने समान नागरिक संहिता की इच्छा व्यक्त की तो कितनों ने उसका ठीक उत्तर दिया? क्या मुसलमानों के बहुमत की ओर से कोई सकारात्मक उत्तर मिला। यदि भारत धर्मो का देश न होकर एक सौ पच्चीस करोड़ व्यक्तियों का देश हो जाये, अल्पसंख्यक बहुसंख्यक के अधिकारों का आधार समाप्त करके प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार समान स्वतंत्रता दे दी जाये तो मुसलमान क्यों पक्ष में नहीं है? घडियाली ऑसू बहाकर पदक लौटाने वाले साहित्यकारों में से कितनों ने समान नागरिक संहिता पर तटस्थ लेखनी चलाई। अब भारत को दारुल इस्लाम बनाने का सपना देखने वालों को नींद से जग जाना चाहिए। हमारे राष्ट्रपति सरीखे सम्मानित जिम्मेदार व्यक्ति को भी भावनाओं में बहने की अपेक्षा विचारों के आधार पर बात रखनी चाहिए। साम्प्रदायिकता एक दूधारी तलवार है, और यदि बिना सतर्कता के भावना में बहकर कोई टिप्पणी की गई तो वह आपको प्रशंसा भले ही दिलवा दे किन्तु गृहयुद्ध को रोकने में सहायक नहीं होगी। उम्मीद है कि ऐसे मामलों में बहुत सतर्कता बरती जायेगी।

5 कार फ्री डे, एक राजनैतिक नाटक

मैं लम्बे समय से मानता रहा हूँ कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सम्पन्न लोगों का वर्चस्व है। भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतंत्र का प्रभाव है और राजनेताओं की मजबूरी है कि वे सम्पन्नों के पक्ष में सब कुछ करते हुए भी गरीबों को भावनात्मक रुप से संतुष्ट रखें। इस काम के लिए वे मध्यम श्रेणी के लोगों का उपयोग करते है। भारत की अर्थव्यवस्था गरीबों, ग्रामीणों, श्रमजीवियों के विरुद्ध पूँजीपतियों, बुद्धिजीवियों तथा शहरी नागरिकों का मिला जुला षड़यंत्र है। गरीबों, ग्रामीणों, श्रमजीवियों को धोखा देने के लिए बीच के लोगों का उपयोग किया जाता है। इसका एक सिद्धांत है कि जो वस्तु अमीर लोग ज्यादा उपयोग करें उस पर प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष छूट दी जाये। दूसरी ओर जो चीज गरीब लोग ज्यादा उपयोग करें उन पर अप्रत्यक्ष कर और प्रत्यक्ष सबसीडी दी जाये। 'कार फ्री डे' भी उसी षड़यंत्र का एक हिस्सा है। दुनिया जानती है कि राजनेता कई प्रकार के नाटक करने में माहिर होते है। ये समस्याएँ पैदा करते है उसे पाल पोस कर बढ़ाते है और जब समस्या बहुत बढ़ जाती है तब उसके समाधान का नाटक करते है। मैं देख रहा हूँ कि लम्बे समय से प्राकृतिक खाद की जगह कृत्रिम खाद को प्रोत्साहित किया गया और अब धीरे–धीरे प्राकृतिक खाद की शुरुवात हो रही है। इसी तरह बहुत प्रयत्न करके प्राकृतिक जूट या अन्य वस्तुओं की जगह प्लास्टिक को प्रोत्साहित किया गया और अब प्लास्टिक को निरुत्साहित करने का नाटक शुरु हुआ है। इसी तरह प्राकृतिक ऊर्जा के स्थान पर कृत्रिम ऊर्जा को प्रोत्साहित किया गया और अब उसके दूष्परिणामों पर चर्चा शुरु की गई है। एक ना समझ से भी ना समझ आदमी जानता था कि कृत्रिम ऊर्जा जितनी उपयोगी है उतनी ही पर्यावरण प्रदूषक भी। कृत्रिम ऊर्जा का संतुलित उपयोग होना चाहिए था किन्तु हुआ इसके विपरीत। अब भी कृत्रिम ऊर्जा के खतरों के प्रति कोई जागरुकता नहीं लाई जा रही है न ही उसका उपयोग घटाने का कोई सार्थक प्रयास हो रहा है। बल्कि आम नागरिकों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि हम इन खतरों के प्रति जागरुक है, आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है, दिल्ली में दिल्ली सरकार के मंत्रियों ने 'कार फ्री डे' के नाम से नाटक किया। यह सही है कि यदि कार कम चलेंगी तो प्रदूषण कम होगा। किन्तु यह भी सही है कि 'कार फ्री डे' उसका लेश मात्र भी समाधान नहीं है बल्कि ऑखों में धूल झोकने का प्रयास है। आप 'कार फ्री डे' के माध्यम से आवागमन घटाना या रोकना चाहते है जिससे प्रदूषण घटे। यह कार्य जितना लाभ देगा उससे ज्यादा नुकसान देगा। आर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान हमेशा ही समस्याओं का विस्तार करता है, चाहे वह समस्या कोई भी हो, चाहे वह समाधान कोई भी करें। यह सम्भव ही नहीं है कि आर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान हो। आप चाहते हैं कि हर महिने की 22 तारीख को दिल्ली के एक सीमित क्षेत्र में कारे कम चले या न चले और इसके लिए लोगों को सहमत किया जाये। क्यों नहीं इसकी जगह यह व्यवस्था कर दी जाये कि 22 तारीख को हर महिने पूरी दिल्ली में कोई कार चलाने के इच्छुक लोग 500 रु. या 300 रु. का टोकन ले और तभी उस दिन दिल्ली में कार चले। यह रुपये दिल्ली सरकार या किसी अन्य सरकार के खजाने में न जाकर या तो पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण कमेटी की देख–रेख में खर्च हो अथवा 33 प्रतिशत निचली आबादी को वर्ष में एक बार बराबर–बराबर नगद दे दिया जाये। मैं जानता हूँ कि ऐसा करने से केजरीवाल जी या अन्य नेताओं को वह प्रशंसा नहीं मिल पायेगी जो साइकिल चलाने के नाटक से मिल रही है। भले ही राजनेता इस बात को ना समझे कि यह भी एक धोखा देने का प्रयास है, किन्तु देश के लोगों को तो इस नाटक की वास्तविकता समझनी

चाहिए। सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे यह आदर्श स्थिति होती है किन्तु नेता ऐसा कभी नहीं चाहता। वह तो चाहता है कि सांप भी जिंदा रहे और लाठी भी टूटती रहे जिससे उसका अस्तित्व जीवित रहे।

प्रश्नोत्तर

(1) मुकेश कुमार ऋषिवर्मा, फतेहाबाद, आगरा 283311

प्रश्नः–पुस्तकालय के पते पर ज्ञानतत्व 1 से 15 सितम्बर 2015 मिला। अध्ययन थोड़ा देर से कर सका क्योंकि मैं फिल्म पागल पंथी की शूटिंग में व्यस्त था। पहला प्रश्न श्री ओमप्रकाश मंजुल ने किया। उन्होंने प्रश्न ही नहीं पूरा लिखा और बगदादी का काला चिट्ठा भी लिखा। परन्तु महोदय आपने अपने उत्तर में संघ को घसीटा। ऐसा क्यों? वैसे आप बार–बार संघ को घसीटते हैं, क्या वजह है, खुलकर बताएँ।

मैं मुस्लिम से नफरत नहीं करता और ढेर सारे मुस्लिम मेरे अच्छे मित्र भी है, जिनसे मैं खुलकर बाते करता हूँ और उनके जवाब भी सकारात्मक ही मिलते हैं। फिल्म पागलपंथी की शूटिंग के दौरान भी मैं एक दरगाह पर रुका था और वहाँ नक्सलवाद, आतंकवाद जैसे गम्भीर मुद्दों पर बात हुई। लोगों के जवाब सकारात्मक मिले और उन्हें संघ से कोई गिला सिकवा नहीं।

उत्तरः–पिछले कुछ महिनों में आपके कई पत्र मिले, जिसमें बहुत नीचे उतर कर व्यक्तिगत आक्षेप किये गये थे। मेरा ऐसे प्रश्नों में उलझना स्वभाव नहीं। अतः मैंने उन्हें कचरे की टोकरी में डालना ठीक समझा। इस बार आपने वैचारिक प्रश्न किया है।

धर्म दो प्रकार का होता है गुण प्रधान और पहचान प्रधान। हिन्दू आमतौर पर गुण प्रधान धर्म को मानता है और इस्लाम पहचान प्रधान को। हिन्दू आमतौर पर विचार मंथन को प्राथमिकता देता है, तो इस्लाम संगठन को। पूरी दुनिया में संगठन शक्ति के आधार पर इस्लाम एकतरफा विस्तार करता गया। किन्तु यही संगठन प्रधान विस्तार उसकी समाप्ति का कारण भी बन रहा है। इस्लाम का विस्तार विश्वव्यापी समस्या है सिर्फ भारत की नहीं। अतः इस्लाम का समाधान विश्वस्तर पर करने के प्रयास हो रहे है। संघ परिवार ऐसे विश्वस्तरीय प्रयासो में बाधक है। जिस समय दुनिया में विश्वस्तरीय मानव स्वभाव तापवृद्धि हो रही हो ऐसे समय भारत को किसी वैचारिक समाधान का मार्ग खोजना चाहिए, न कि मानव स्वभाव तापवृद्धि को प्रोत्साहित करने का। मैंने दो दशक पहले अपनी पुस्तक नई दिशा में इस संबंध में चार लाईन लिखी है–

(1) जो लोग मान्यता में भी कट्टरवादी है तथा कार्यप्रणाली में भी उग्रवादी, उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।
(2) जो लोग मान्यता में शान्तिप्रिय है तथा परिस्थितिवश कट्टरवादी तथा उग्रवादी उन्हें नियंत्रित करना चाहिए।
(3) जो लोग मान्यता में उग्रवादी है तथा कार्यप्रणाली में शान्तिप्रिय है उन्हें समझाना चाहिए। उनसे विचार मंथन करना जारी रखना चाहिए।
(4) जो लोग मान्यता में भी शान्तिप्रिय है तथा कार्यप्रणाली में भी उनका अनुसरण करना चाहिए।

मैंने अपने को चौथे नम्बर पर रखा है। संघ के लोग अपना नम्बर स्वयं तय करें। मेरे विचार से भारत में अभी ऐसी परिस्थिति नहीं आई है कि हम हिन्दुत्व की मूल अवधारणा को छोड़कर इस्लामिक अवधारणा अर्थात जैसे को तैसा का अनुसरण करें। मैं तो आश्वस्त हूँ कि शांतिप्रिय तरीके से भी इस्लामिक विचार धारा को समान नागरिक संहिता के लिए मजबूर किया जा सकता है यदि संघ बीच में पैर फसाना बंद कर दें।

हम आश्वस्त हैं कि हम चौथे नम्बर के लोग तीसरे नम्बर के साथ सहमति बनाकर पहले नम्बर को समाप्त कर सकते है। यदि यह कार्य कठिन होगा तो हम दुसरे नम्बर से भी मदद ले सकते है। यदि यह कार्य फिर भी कठिन होगा तो हम दूसरे नम्बर और पहले नम्बर को आपस मे टकराते हुए देख सकते है और यदि उसके बाद भी पहले नम्बर के लोग मजबूत पड़े तो हम दूसरे नम्बर के लोगों की मदद भी कर सकते है। आपने देखा होगा कि सरसठ वर्षों के बाद पहली बार हम जैसे लोगों ने न चाहते हुए भी नरेन्द्र मोदी को मदद की। यदि भारत मे शान्ति चाहिये तो पहले नम्बर के लोगों को या तो अपनी कार्य प्रणाली बदलनी होगी अन्यथा समाप्त होने के लिये तैयार रहना होगा।

2 रामवीर श्रेष्ठ, दिल्ली। समान नागरिक संहिता, जैसी मैंने समझी, ज्ञानतत्व 9478

जब देश में समान नागरिक संहिता लागू हो जाएगी तब देश की तस्वीर कैसी होगी? मैंने जितना समझा, उसके मुताबिक देश में एससी/एसटी/ओबीसी के भेद खत्म होकर सब समान हो जाऐंगे, इतना ही नहीं तब आरक्षण पर किसी का अधिकार नहीं बचेगा। सरकार चाहे तो गरीबी का कोई पारदर्शी मानक बनाकर गरीब लोगों को मदद कर सकती है। दूसरी बात, मेरे विचार से समान नागरिक संहिता और समान आचार संहिता दोनों अलग–अलग होती हैं। समान आचार संहिता का मतलब लोगों के आचरण से होता है, जबकि नागरिक संहिता का मतलब नागरिकों के उन अधिकारों से होता है जिन्हें संविधान देता है।

इसे थोड़ा और विस्तार दें तो जब देश में समान नागरिक संहिता लागू होगी तब सरकार समाज में अपनी ओर से जाति, प्रांत, भाषा, उम्र, महिला, पुरुष, उत्पादक और उपभोक्ता या किसान मजदूर किसी के लिए अगल से नियम कानून नहीं बना सकेगी। मसलन सरकार किसी एक भाषा को आगे बढ़ाकर बाकी भाषाओं के साथ भेदभाव नहीं कर सकती। देश के किसी एक प्रांत को कोई खास रियायत नहीं दी जा सकेगी। उम्र के आधार पर किसी को कोई रियायत नहीं दी जा सकेगी। महिलाओं को मिले सारे विशेषाधिकार वापस हो जाऐंगे। वहीं समान आचार संहिता का मतलब मुसलमानों की चार शादियों पर रोक नहीं होगा, बल्कि हिंदुओं

को भी एक से ज्यादा शादियां करने की छूट मिल जाएगी, तब किसी धमेंद्र या हेमामालिनी को महज शादी करने के लिए मुसलमान नहीं बनना पड़ेगा। क्योंकि समाज के उस आचरण को तब तक अपराध नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि किसी मौलिक अधिकार का उलंघन ना होता हो।

सवाल उठता है कि समान नागरिक संहिता को लागू करने से पहले उस सीमा रेखा का पता लगाया जाना चाहिए जो समान आचार संहिता और नागरिक संहिता के बीच की सीमा तय करती हो। शब्दों में उन सीमाओं को कई तरह से कहा जा सकता है। आचार्य पंकज की मानें तो आचार संहिता व्यक्तिगत होती है, जबकि नागरिक संहिता समूहगत। वहीं मौलिक चिंतक बजरंग मुनि कहते हैं कि स्वतंत्रता और मनमानी के बीच बहुमत से खींची गई सीमा रेखा को समान नागरिक संहिता कहा जाना चाहिए। इसका मतलब ये हुआ कि एक मानक बिंदु के नीचे व्यक्ति को व्यक्तिगत आचरण के लिए पूरी छूट दी जानी चाहिए और उसके ऊपर सब पर समान कानून लागू होने चाहियें। इसे और सरलता से समझने के लिए हम गाय, गंगा और पेड़ पौधों की सुरक्षा का आधार ले सकते हैं। पहले सवाल उठता है कि गोमांस ना खाने का आधार क्या हो? क्या सिर्फ ये कि वो हिंदुओं के लिए पूज्य है, या फिर इसलिए कि गाय के दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर आदि की उपयोगिता ज्यादा है। उपयोगिता के आधार को तय करने के लिए सिर्फ बहुमत के बजाय करीब–करीब सर्वमत बनाने की जरूरत होती है, क्योंकि यह कोई सरकार का बनाना गिराना भर नहीं है। इससे व्यक्ति का जीवन प्रभावित होता है इसलिए देश के अधिकतम् लोगों को विश्वास में लेकर जिसमें मुसलमान भी शामिल हैं, उसे आधार मानकर गोहत्या पर पूर्ण पाबंदी लगाई जा सकती है। इसमें भी तय करना पड़ेगा कि भई सिर्फ भारतीय गायों के लिए ये कानून बनाना है या विदेशी और नीलगायों को भी उनके साथ गाय शब्द लगे होने का लाभ दिया जाए। अब सवाल उठता है कि अगर कोई फिर भी गोमांस खाता है तब क्या हो? क्या उसे फांसी दे देनी चाहिए या फिर उसे आजीवन कारावास की सजा दे दी जाए? समझदारी से काम लें तो ऐसा नहीं किया जा सकता। क्योंकि मामला तो उसके आचरण का है, सवाल उठता है कि फिर क्या हो? जवाब है, ऐसे आदमी की सुरक्षा करने के कर्तव्य को समाज क्यों ना वापस ले लें, या फिर सरकार उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी से पल्ला क्यों ना झाड़ ले? ऐसे में अगर उसे फिर भी गोमांस खाना है तो फिर अपने दम पर खाना होगा। किसकी आस्था तलवार में तब्दील हो जाएगी कुछ कहा नहीं जा सकता।

इसी तरह गंगा में कचरा डालने से आप अगर मुसलमानों को, नगर पालिका या नगर निगम को रोकेंगे, तो उस हर व्यक्ति को रोकना होगा जिसके चलते गंगा या किसी भी नदी में प्रदूषण हो। फिर नदियों में दुर्गा या गणपति विर्सजन कैसे हो सकता है? अगर नदियों की उपयोगिता पर सर्व समाज एक हो जाए तो इसकी छूट किसी को नहीं दी जा सकती कि प्लास्टर ऑफ पेरिस और कैमिकल रसायनों से बनी प्रतिमाओं का विर्सजन हो। हां मिट्टी, गेरू, और खड़िया से बनी प्रतिमाओं के विर्सजन पर आस्था के लिए समाज अगर विचार करें तो कर सकता है।

यूं तो मौलिक अधिकार सिर्फ मनुष्यों को ही हासिल हैं। जीवन जीने के अधिकार को छोड़कर जीव या पेड़ पौधों के लिए संपति, अभिव्यक्ति, स्वःनिर्णय के मौलिक अधिकार कोई महत्व नहीं रखते, लेकिन हां जीवन उनमें भी है, उनकी जान लेने पर कष्ट उन्हें भी होता है, उनकी भावनाओं को समझकर उनके जीने के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा देना एक आदर्श और संवेदनशील समाज का लक्षण हो सकता है। जाहिर है हमने पेड़ों के जीने के अधिकार का हनन किया तो आज प्रदूषण की समस्या सामने खड़ी हो गई, वरना एक वो भी दिन था जब जंगलों को जलाकर खेती करने यानि झूम की खेती करने पर भी हमें कभी एतराज नहीं था। आज जीवन को बचाने के लिए जंगलों को बचाना जरूरी हो गया है। ऐसे में अगर समाज और सिस्टम मिलकर 1 पेड़ काटने पर 10 पेड़ लगाने की शर्त तय करने के साथ ही कुछ हर्जाना भी तय करता है, तो अपना पेड़ होने के बाद भी वो देना होगा, जबकि वो संपति के तौर पर उसका मौलिक अधिकार है।

किसी मां बाप के पास कितने बच्चे हों ये उनके स्वनिर्णय का मौलिक मामला है, जिसमें दखल नहीं दिया जा सकता। लेकिन अगर देश में आबादी बेकाबू होने का खतरा हो, ऐसे में समाज और सरकार अगर तय करते हैं कि 2 बच्चों से ज्यादा पैदा करना सही नहीं है तब भी वो 2 से ज्यादा बच्चे पैदा करने से किसी को रोक नहीं सकते। वो सिर्फ उन सुविधाओं में कटौती कर सकते हैं, जो उस परिवार को दी जा रही होती हैं। मसलन तीसरे बच्चे पर पिता को मिलने वाली सुविधा, चौथे बच्चे पर मां को मिलने वाली सुविधा समाप्त की जा सकती है, और पांचवें बच्चे पर पूरे परिवार की सुविधाओं को समाप्त किया जा सकता है।

शादी 1 महिला और 1 पुरुष के बीच सहमति से बना संबंध है। क्योंकि सहमति दो लोगों के अपने बारे में अपने लिए फैसले का नतीजा है। देश के कुछ हिस्सों में अभी भी 1 महिला कई पुरुषों से शादी करती है। खासकर मुसलमानों में 1 पुरुष को 4 शादियां करने की छूट हासिल है। सवाल उठता है कि बेचारे हिंदुओं पर ही ये मार क्यों? वैसे भी 1 पत्नी के रहते उसे बताए बगैर किसी दूसरी महिला से संबंध बनाना धोखेबाजी माना जाएगा, लेकिन वो अगर एक ही घर में रहने के लिए सहमत हों तो इसमें सरकार समेत किसी का भी दखल स्वनिर्णय के मौलिक अधिकार की मुखालफत माना जाएगा। हमने सुना है कि द्रोपदी को बिना बताए अर्जुन ने सुभद्रा को अपनी पत्नी तो बना लिया, लेकिन द्रोपदी की सहमति ना मिलने का डर बराबर था। इसलिए कृष्ण ने अपनी बहन को द्रोपदी को सहमत करने का तरीका बताया। इसी सहमति से श्रीकृष्ण ने 16 हजार 8 महिलाओं को अपनी पत्नी बनाया। मेरा मतलब साफ है कि हिंदुओं को मुसलमानों की 4 शादियों में छूट के बजाये हिंदू कोड बिल में संशोधन करने की मांग करनी चाहिए ताकि यहां भी घुटन कम हो सके।

उत्तरः–भारतीय संविधान ने राज्य को यह दायित्व दिया था कि वह संवैधानिक व्यवस्था में समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करें किन्तु राजनेताओं ने कभी इस दिशा में कोई कदम नहीं बढ़ाया। बल्कि उन्होंने लगातार इस निर्देश के विपरीत आचरण किया। सुप्रीम कोर्ट ने भी कई बार राज्य को सलाह दी कि वह समान नागरिक संहिता की ओर बढ़े और इस बार तो सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश की जगह आंशिक आदेश दिया है। मैं समझता हूँ कि समान नागरिक संहिता और समान आचार संहिता का भेद न समझने के कारण सारा भ्रम फैला है। संविधान बनाने वाले भी इन दोनों का अन्तर नहीं समझते थे, और यही कारण है कि सुप्रीम कोर्ट भी इन दोनों का फर्क साफ–साफ नहीं समझ रहा। राजनेता या संसद तो समझना ही नहीं चाहती। आचार संहिता व्यक्ति के लिए स्वैच्छिक होती है और नागरिक संहिता बाध्यकारी। व्यक्ति ज्यों ही किसी अन्य के मौलिक अधिकारों की सीमाओं का अतिक्रमण करता है त्यों ही उस पर नागरिक संहिता लागू हो जाती है और यही नागरिक संहिता उसके कार्य को अपराध घोषित करती है, तथा उसे दण्डित भी करती है। नागरिक संहिता को ठीक से लागू करने के लिए राज्य को कुछ विशेष अधिकार दिये जाते है। इन अधिकारों का उलंघन गैर कानूनी होता है और राज्य उसके पालन के लिए भी आपको अनुशासित कर सकता है।

परिवार या समाज अपने सदस्यों के लिए जो नियम बनाता है वह उसकी आचार संहिता है। नागरिक संहिता तो वहॉ से शुरु होती है जब भारतीय संविधान अपने नागरिक के लिए कोई नियम या कानून बनाता है। वास्तविकता तो यह है कि संविधान या राज्य को व्यक्ति के व्यक्तिगत पारिवारिक या सामाजिक मामलों में कोई नियम कानून बनाने से बचना चाहिए तथा व्यक्ति, परिवार, समाज को भी चाहिए कि वह संविधान या राज्य के बनाये कानूनो में कोई हस्तक्षेप न करें। हो यह रहा है कि दोनों ही अपनी–अपनी सीमाये ंतोड़ रहे है। विवाह करना, सन्तान उत्पत्ति, खान–पान, रहन–सहन, व्यापार, निवास, आदि राज्य के हस्तक्षेप से तब तक बाहर है जब तक वह किसी अन्य की स्वतंत्रता पर बाधक न बनते हों। परिवार में सम्पत्ति का विभाजन कैसे हो इस संबंध में राज्य नियम बना सकता है। किन्तु वह ऐसे नियम में किसी तरह का भेदभाव नहीं कर सकता, क्योंकि कानून की नजर में प्रत्येक नागरिक के अधिकार समान हैं। राज्य किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, लिंग, गरीब–अमीर, किसान–मजदूर, ग्रामीण–शहरी आदि के नाम पर कोई अलग–अलग कानून नहीं बना सकता, न ही किसी को अलग भेदभाव के अधिकार दे सकता है। यह अवश्य है कि राज्य किसी को भी अपनी ओर से सहायता देने में भेदभाव कर सकता है। यह विषय बहुत जटिल नहीं है कि आचार संहिता और नागरिक संहिता को अलग–अलग कैसे किया जाये, बल्कि इसे जटिल बना दिया गया है। संघ परिवार समान नागरिक संहिता की बात करता है और समान आचार संहिता को थोपना चाहता है। यही कारण है कि भारत के अल्पसंख्यको में यह अनावश्यक भ्रम पैदा हुआ कि समान नागरिक संहिता के नाम पर समान आचार संहिता थोप दी जायेगी। गाय, गंगा, मंदिर, विवाह, तलाक आदि के विषय में राज्य यदि कोई कानून न बनावे और बने हुए कानून भी हटा ले तो अल्पसंख्यकों और महिलाओं को कोई दिक्कत नहीं होगी। मैं जानता हूँ कि समान नागरिक संहिता लागू होते ही किसी प्रकार के आरक्षण अथवा हिन्दू कोड बिल जैसे भेदकारी कानून समाप्त हो जायेंगे। यदि वर्तमान हिन्दू कोड बिल द्वारा प्रदत्त महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार हटाकर परिवार की सम्पत्ति में प्रत्येक सदस्य का समान हिस्सा कर दिया जाये तो महिलायें प्रसन्न होंगी, दुखी नहीं । यदि विवाह में हिन्दुओं के लिए बने एक अलग कानून को समाप्त कर दे ंतो मुसलमानों को भी कोई आपत्ति नहीं होगी। यदि तलाक के संबंध में कोई कानून न रहे और यह विषय व्यक्ति, परिवार या समाज पर छोड़ दिया जायें तो हिन्दू–मुसलमान, महिला–पुरुष किसी को कोई आपत्ति नही होगी। किसी भी वर्ग को दिया जाने वाला विशेषाधिकार हमेशा उस वर्ग के धूर्तों के लिए सहायक सिद्ध होता है, तथा दूसरे वर्ग के शरीफों के लिए घातक। नागरिक संहिता में इस तरह के विशेषाधिकार हमेशा धूर्तों को सशक्त करते है। आज सम्पूर्ण समाज में जो धुर्तता बढ़ती जा रही है उसका एक महत्वपूर्ण कारण ये विशेषाधिकार ही हैं। इन विशेषाधिकारों को यदि समाप्त किया जायेगा तो इन विशेषाधिकारों का लाभ उठा रहे सारे धूर्त एक जूट होकर इसका विरोध करेंगे। इन विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए अलग–अलग प्रयास करने की अपेक्षा यदि समान नागरिक संहिता का एक ब्रह्मास्त्र चला दिया जाये तो ये सारे अनिष्टकारी विशेषाधिकार अपने आप समाप्त हो ायेंगे। मेरे विचार से हमें अपनी बहुत बड़ी शक्ति समान नागरिक संहिता के नाम पर फैले या फैलाये गये भ्रम निवारण में भी लगानी चाहिए। आपका लेख उस दिशा में सार्थक प्रयास है।

3 श्री रामस्वरुप जी, नागौर, राजस्थान, ज्ञानतत्व 51760

प्रश्नः— नरेन्द्र जी से बात हुई। कोई 40 वर्ष से अधिक समय से लोकस्वराज्य हेतु आप अत्यधिक कठिन परिश्रम कर रहे हैं। 5 संगठन बन गये। आन्दोलन की स्थिति नहीं है। मेरा अनुरोध है विभिन्न अराजनैतिक संगठन जो राष्ट्रीय स्तर में हैं उनके पदासीनों की कार्यशाला हो। कई लाख लोग नई दिल्ली में पहुॅचे एक साथ, संसद को घेरे तो शायद सुन लें कुर्सी वाले। सब तरह के

अपराध घटे उस बाबत कागज भेजा था। अब भेज रहा हूँ' जन प्रतिनिधि और जन कष्ट निवारण। जन प्रतिनिधि हंगामा करें तो समाप्त हो जनप्रतिनिधित्व।

उत्तरः– आपने पहले भी यह सुझाव दिया था। मैं अब तक नहीं समझा कि पहले संगठन बनेगा तब कोई आन्दोलन होगा, या बिना संगठन के ही कोई आन्दोलन कर दिया जाये। लाखों लोग संसद को घेरे परन्तु किस मांग के लिए यह आपने नहीं बताया। फिर संसद को घेरना क्या अहिंसक प्रयत्न माना जायेगा? संसद समाज से नीचे है ऊपर नहीं। क्या यह उचित है कि ऊपर वाला अपने नीचे वाले को घेरे। मेरे विचार से तो संविधान भी समाज से नीचे है ऊपर नहीं। जब कोई मार्ग नहीं दिखता तब ट्यूनीशिया मिश्र सरीखे सड़को पर आकर संविधान पर नियंत्रण का प्रयास होता है। क्या भारत में संवैधानिक तरीके से संविधान संशोधन के मार्ग नहीं बचे है? मैं समझता हूँ कि आप जो मार्ग सुझा रहे है ये मार्ग ही परिर्वतन में बाधक है। लोकतंत्र में कानून अपने हाथ में लेने का सुझाव घातक है। फिर भी यदि आप या कोई अन्य साथी ऐसा करें तो मैं उसे रोकूँगा नहीं। यह अवश्य है कि मेरा उस मार्ग पर विश्वास नहीं है मैं यह भी नहीं समझा कि वर्तमान सामाजिक संगठनों में से कौन–कौन संगठन ऐसे है जो समाज और राज्य के अधिकारों की सीमायें निश्चित करने के विषय में सोचते हैं। यदि वर्तमान संगठन राज्य के अधिकारों पर कोई विचार न करके सुविधाओं के बारे में सोचते है तो बताइयें मैं उन्हें बुलाकर क्या करूँ? फिर भी आप इस प्रयत्न में लगे है। यदि कोई ऐसा प्रयत्न बढ़ता है तो मैं आपके ऐसे प्रयत्न में शामिल रहूँगा, सहयोग करुँगा। किन्तु मैं स्वयं ऐसा कोई प्रयत्न नही करुँगा।

4 श्री ओमप्रकाश मंजुल, पीलीभीत, उ0प्र0 ज्ञानतत्व 6011

प्रश्नः—ज्ञानतत्व 322 मिला, अच्छा लगा परन्तु सुनिल संतोष राव तामगाड़गे को दिया गया आपका उत्तर अच्छा नहीं लगा। शास्त्रों में शठं शाठयम् समाचरेत का उल्लेख है जिसको आप चरितार्थ न कर सके। इस व्यक्ति के नाम में तो संतोष है किन्तु शरीर में अवश्य ही कोई अधम, असंतुष्ट, अतृप्त आत्मा बैठी हुई है, जिसके लेखन के उत्तर में उसी भाषा का उपयोग होना चाहिए था। मैं होता तो मेरा उत्तर इस तरह का नही होता। तामगाड़गे जी के पत्र से ज्ञात होता है कि वे विकृत मानसिकता के व्यक्ति हैं। भगवान जाने उनमें यह गुण विरासत में मिला है अथवा बाबा साहब से। उन्हें इतना भी नहीं मालूम कि संविधान बनाया ही इसलिए जाता है कि बुरे लोग मजबूर होकर अच्छे बनें। यह श्रीमान जी जिस हिन्दू संस्कृति को अधर्म कहते है उस धर्म की महानता और उदारता के कारण ही वे ऐसा कह पा रहे हैं। किसी अन्य धर्म के होकर उस धर्म को इतना अधर्म कहा होता तो इनका सर कलम हो गया होता। वर्ण व्यवस्था, जिसके पक्ष में कहने के लिए बहुत है, इन्ही जैसे शैतानों की बर्बरता को रोकने के लिए की गयी थी। यह आज भी एकदम सही है। ये हिन्दु और संविधान से परस्पर विरोधी बताते है। मैं इनसे पूछता हूँ क्या हरिजन और अच्छा इंसान एक ही व्यक्ति नहीं हो सकते? मैं इनसे एक बात और पूछता हूँ कि इनके आका का अंत कैसे हुआ? दुनिया के हर महापुरुष के जीवन परिचय में उसके अंतिम समय का वर्णन भी होता है। मैंने बाबा साहब अम्बेडकर के बारे में ऐसा नहीं पढ़ा। वे अच्छे आदमी थे, महा मानव थे, तामगाडगे जी बतावे कि अम्बेडकर का अंत कैसे हुआ? इससे वर्तमान और भावी पीड़ियॉ दोनों लाभान्वित होंगी।

उत्तरः—मैं बाबा साहब के अंतिम समय के विषय में जानकारी नहीं रखता, अतः नहीं बता सकता। भारतीय समाज व्यवस्था, गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार चार वर्णों में विभाजित की गयी है। चारों बिल्कुल भिन्न प्रकृति के होते हुए भी एक दूसरे के पूरक है–1. विचारक 2. सुरक्षा करमी 3. व्यवसायी 4. श्रमिक। इस शास्त्रोक्त वर्ण व्यवस्था का कुछ धुर्तो ने दुरुपयोग करके इन्हें जन्म के आधार पर कर दिया जिसका दुष्परिणाम आज दिख रहा है कि वर्ण व्यवस्था को नया नाम देकर प्रचलित किया जा रहा है। मैं एक विचारक हूँ और ऐसा लगता है कि आप क्षत्रिय प्रवृत्ति के है। मेरी अपनी प्रवृत्ति है और सीमायें है। मैंने जो उत्तर दिया वह मेरी प्रवृत्ति के अनुसार बिल्कूल ठीक है। आप अपनी प्रवृत्ति के अनुसार जो उत्तर देते वह आपके अनुसार ठीक हो सकता था। मैं नहीं समझता कि सिर कलम होने की बात कहना आपको क्यों आवश्यक लगा। आप विचार करिये कि जिस व्यक्ति ने किसी व्यक्ति को जमीन से उठाकर आसमान तक पहुँचाने में सहायता की हो उस व्यक्ति का गुणगान करना कैसे गलत है? सुनिल जी सरीखे लोग यदि बाबा साहब की सहायता से आरक्षण का लाभ नहीं उठाते तो वे आज भी वही के वही पड़े रहते, जहॉ अनेक अवर्ण पड़े हैं। स्वतंत्रता के पूर्व धूर्त सवर्णों ने जो कुछ किया वह बिल्कूल गलत था यद्यपि स्वतंत्रता के बाद अम्बेडकर जी ने जो मार्ग निकाला, वह भी पूरी तरह गलत था। सच बात यह है कि बाबा साहब अम्बेडकर ने सवर्णो के प्रति बहुत अच्छा काम किया कि आज की 90 प्रतिशत सवर्ण अच्छी स्थिति में है और 90 प्रतिशत अवर्ण बुरी स्थिति में। यदि बाबा साहब ने आरक्षण नहीं दिया होता तो आज आधे सवर्ण बुरी स्थिति में होते और आधे अवर्ण अच्छी स्थिति में। जो सवर्ण यह मानते है कि बाबा साहब ने बुरी नीयत से सवर्णो के साथ बुरा किया उन्हें यह सोचना चाहिए कि स्वतंत्रता के पूर्व तक सवर्णें ने अवर्णों के साथ जो किया वह कितना अच्छा था? बाबा

साहब के आरक्षण रूपी हथियार का लाभ उठाकर जो दस प्रतिशत अवर्ण तथा नब्बे प्रतिशत सवर्ण आगे बढ़े हुए है वे यदि बाबा साहब को भगवान मानते है तो ऐसे लोगों की मजबूरी आपको समझनी चाहिये। अंत में मैं कह सकता हूँ कि मैंने अपनी क्षमतानुसार ठीक उत्तर दिया है क्योंकि व्यवस्था परिवर्तन हमारा लक्ष्य है। व्यक्ति सुधार लक्ष्य नहीं।